35

अधीनस्थ न्यायालय (Subordinate Courts)

राज्य की न्यायपालिका में एक उच्च न्यायालय एवं अधीनस्थ न्यायालय होते हैं, जिन्हें निम्न न्यायालयों के नाम से भी जाना जाता है। इन्हें अधीनस्थ न्यायालय कहने का कारण यह है कि ये उच्च न्यायालय के अधीन होते हैं। ये उच्च न्यायालय के अधीन एवं उसके निर्देशानुसार जिला और निम्न स्तरों पर कार्य करते हैं।

संवैधानिक उपबंध

संविधान के भाग VI में अनुच्छेद 233 से 237 तक इन न्यायालयों के संगठन एवं कार्यपालिका[1] से स्वतंत्रता सुनिश्चित करने वाले उपबंधों का वर्णन किया गया है।

1. जिला न्यायाधीश की नियुक्ति

जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति, पदस्थापना एवं पदोन्नति राज्यपाल द्वारा राज्य के उच्च न्यायालय के परामर्श से की जाती है।

वह व्यक्ति जिसे जिला न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया जाता है, उसमें निम्न योग्यतायें होनी चाहिये:

(क) वह केंद्र या राज्य सरकार में किसी सरकारी सेवा में कार्यरत न हो।

(ख) उसे कम से कम सात वर्ष का अधिवक्ता का अनुभव हो।

(ग) उच्च न्यायालय ने उसकी नियुक्ति की सिफारिश की हो।

2. अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति

राज्यपाल, जिला न्यायाधीश से भिन्न व्यक्ति को भी न्यायिक सेवा में नियुक्त कर सकता है किन्तु वैसे व्यक्ति को, राज्य लोक सेवा आयोग और उच्च न्यायालय[2] के परामर्श के बाद ही नियुक्त किया जा सकता है।

3. अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण

जिला न्यायालयों एवं अन्य न्यायालयों में न्यायिक सेवा से संबद्ध व्यक्ति की पदस्थापना, पदोन्नति एवं अन्य मामलों पर नियंत्रण का अधिकार राज्य के उच्च न्यायालय को होता है।

4. व्याख्या

'जिला न्यायाधीश' के अंतर्गत–नगर दीवानी न्यायाधीश, अपर जिला न्यायाधीश, संयुक्त जिला न्यायाधीश, सहायक जिला न्यायाधीश, लघु न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश, मुख्य प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट, अतिरिक्त मुख्य प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट, सत्र न्यायाधीश,

अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश एवं सहायक सत्र न्यायाधीश आते हैं।

'न्यायिक सेवा' में वे अधिकारी आते हैं, जो जिला न्यायाधीश एवं उससे नीचे के न्यायिक पदों से संबद्ध होते हैं।

5. कुछ न्यायाधीशों के लिये उक्त उपबंधों का लागू होना

राज्यपाल यह निर्देश दे सकते हैं कि उक्त प्रावधान राज्य की न्यायिक सेवा से संबंधित न्यायाधीशों के किसी वर्ग या वर्गों पर लागू हो सकते हैं।

सरंचना एवं अधिकार क्षेत्र

राज्य द्वारा अधीनस्थ न्यायिक सेवा की संगठनात्मक संरचना, अधिकार क्षेत्र एवं अन्य शर्तों का निर्धारण किया जाता है। हालांकि एक राज्य से दूसरे राज्य में इनकी प्रकृति भिन्न हो सकती है। तथापि सामान्य रूप से उच्च न्यायालय से नीचे के दीवानी एवं फौजदारी न्यायालयों के तीन स्तर होते हैं। इन्हें नीचे दर्शाया गया है:

उच्च न्यायालय

जिला एवं सत्र न्यायाधीश का न्यायालय

(दीवानी पक्ष)	(फौजदारी पक्ष)
अधीनस्थ न्यायाधीश का न्यायालय	मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी का न्यायालय
मुंसिफ अदालत	न्यायिक दंडाधिकारी का न्यायालय

जिला न्यायाधीश, जिले का सबसे बड़ा न्यायिक अधिकारी होता है। उसे सिविल और अपराधिक मामलों में मूल और अपीलीय क्षेत्राधिकार प्राप्त है। दूसरे शब्दों में, जिला न्यायाधीश, सत्र न्यायाधीश भी होता है। जब वह दीवानी मामलों की सुनवाई करता है तो उसे जिला न्यायाधीश कहा जाता है तथा जब वह फौजदारी मामलों की सुनवाई करता है तो उसे सत्र न्यायाधीश कहा जाता है। जिला न्यायाधीश के पास न्यायिक एवं प्रशासनिक दोनों प्रकार की शक्तियां होती हैं। उसके पास जिले के अन्य सभी अधीनस्थ न्यायालयों का निरीक्षण करने की शक्ति भी होती है। उसके फैसले के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। जिला न्यायाधीश को किसी अपराधी को उम्रकैद से लेकर मृत्युदंड देने तक का अधिकार होता है। हालांकि उसके द्वारा दिये गये मृत्युदंड पर तभी अमल किया जाता है, जब राज्य का उच्च न्यायालय उसका अनुमोदन कर दे।

जिला एवं सत्र न्यायाधीश से नीचे दीवानी मामलों के लिये अधीनस्थ न्यायाधीश का न्यायालय तथा फौजदारी मामलों के लिये मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी का न्यायालय होता है। अधीनस्थ न्यायाधीश को दीवानी याचिका[3] (सिविल सूट) के संबंध में अत्यंत व्यापक शक्तियां प्राप्त होती हैं। मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी फौजदारी मामले की सुनवाई करता है तथा सात वर्ष तक के कारावास की सजा दे सकता है।

सबसे निचले स्तर पर, दीवानी मामलों के लिये मुंसिफ न्यायाधीश का न्यायालय तथा फौजदारी मामलों के लिये सत्र न्यायाधीश का न्यायालय होता है। मुंसिफ न्यायाधीश का सीमित कार्यक्षेत्र होता है तथा वह छोटे दीवानी मामलों[4] पर निर्णय देता है। सत्र न्यायाधीश ऐसे फौजदारी मामलों की सुनवाई करता है, जिसमें तीन वर्ष के कारावास की सजा दी जा सकती है।

कुछ महानगरों में, दीवानी मामलों के लिये नगर सिविल न्यायालय (मुख्य न्यायाधीश) एवं फौजदारी मामलों के लिये महानगर न्यायाधीश का न्यायालय होता है।

कुछ राज्यों एवं प्रेसीडेंसी नगरों में छोटे मामलों के लिये पृथक न्यायालयों[5] की स्थापना की गयी है। ये न्यायालय छोटे दीवानी मामलों की सुनवाई करते हैं। उनका निर्णय अंतिम होता है लेकिन उच्च न्यायालय उनके निर्णयों की समीक्षा कर सकता है।

कुछ राज्यों में पंचायत न्यायालय भी छोटे दीवानी एवं फौजदारी मामलों की सुनवाई करते हैं। इन्हें कई नामों से जाना जाता है, जैसे–न्याय पंचायत, ग्राम कचहरी, अदालती पंचायत, पंचायत अदालत आदि।

राष्ट्रीय कानूनी सेवा प्राधिकरण[6]

भारत के संविधान का अनुच्छेद 39A समाज के कमजोर वर्गों के लिए नि:शुल्क कानूनी सहायता का प्रावधान करता है और सबके लिए न्याय सुनिश्चित करता है। संविधान का अनुच्छेद 14 एवं 22(1) राज्य के लिए यह बाध्यकारी बनाता है कि वह कानून के समक्ष समानता सुनिश्चित करने के साथ ही एक ऐसी कानूनी प्रणाली स्थापित करे जो सबके लिए समान अवसर के आधार पर न्याय का संवर्धन करे। 1987 में कूननी सेवा प्राधिकरण अधिनियम संसद द्वारा अधिनियमित किया गया, जो कि 9 नवंबर, 1995 से लागू हुआ ताकि अवसर की समानता के आधार पर समाज के कमजोर वर्गों को मुफ्त एवं सक्षम कानूनी सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए राष्ट्रव्यापी एकसमान नेटवर्क स्थापित किया जा सके। राष्ट्रीय कानूनी सेवा प्राधिकरण (NLSA) का गठन कानूनी सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के तहत किया गया है - कानूनी सहायता कार्यक्रमों के अनुश्रवण एवं मूल्यांकन के लिए तथा अधिनियम के उपलब्ध कानूनी या वैधानिक सेवाओं के लिए नीतियां एवं कार्यक्रम बनाने के लिए।

प्रत्येक राज्य में उच्च न्यायालय में एक राज्य कानूनी सेवा प्राधिकरण तथा प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक उच्च न्यायालय कानूनी सेवा समिति (High Court Legal Services Committee) का गठन किया गया है। जिलों एवं ताल्लुकों में जिला कानूनी सेवा प्राधिकरण तथा ताल्लुका कूननी सेवा प्राधिकरण का गठन एनएलएसए की नीतियां एवं निर्देशों को प्रभावी बनाने के लिए साथ ही लोगों को नि:शुल्क कानूनी सहायता तथा राज्यों में लोक अदालतों के संचालन के लिए किया गया है।

सर्वोच्च न्यायालय वैधानिक सेवा समिति का गठन कानूनी सहायता कार्यक्रमों के प्रशासन एवं कार्यान्वयन के लिए किया गया है जहां तक इनका सम्बन्ध सर्वोच्च न्यायालय से है।

एनएएलएसए (नालसा) देश भर में कानूनी सेवा कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिए राज्य कानूनी सेवा प्राधिकरणों के लिए नीतियां, सिद्धांत, दिशा-निर्देश निर्धारित करता है तथा प्रभावी एवं सस्ती योजनाएं भी बनाता है।

प्राथमिकत: राज्य वैधानिक सेवा प्राधिकरणों, जिला वैधानिक सेवा प्राधिकरणों, ताल्लुक वैधानिक सेवा प्राधिकरणों आदि को निम्नलिखित कार्य सौंपे गए हैं:

1. अर्ह व्यक्तियों को मुफ्त एवं सक्षम कानूनी सेवाएं उपलब्ध कराना।
2. विवादां के सौहार्दपूर्ण ढंग से निपटारे के लिए लोक अदालतें आयोजित करना।
3. ग्रामीण क्षेत्रों में कानूनी जागरूकता शिविरों का आयोजन करना।

मुफ्त या नि:शुल्क कानूनी सेवाओं में शामिल हैं-

(a) अदालती फीस, प्रोसेस फीस तथा अन्य सभी शुल्कों आदि का भुगतान जो कानूनी कार्यवाहियों में खर्च होते हैं।

(b) कानूनी कार्यवाहियों में अधिवक्ताओं (वकीलों) की सेवाएं उपलब्ध कराना।

(c) कानूनी कार्यवाहियों से सम्बन्धित आदेशों को प्रभावित प्रतियां तथा अन्य दस्तावेज प्राप्त करना एवं वितरित करना।

(d) अपील, पेपर बुक आदि की तैयारी, जिसमें दस्तावेजों का मुद्रण एवं अनुवाद भी शामिल है।

मुफ्त कानूनी सहायता के लिए अर्ह व्यक्तियों में शामिल हैं:

(i) महिलाएं एवं बच्चे।

(ii) अनुसूचित जाति/जनजाति के सदस्य।

(iii) औद्योगिक मजदूर।

(iv) सामूहिक विपदा, हिंसा, बाढ़, सूखा, भूकम्प, औद्योगिक आपदा आदि के शिकार व्यक्ति।

(v) दिव्यांग व्यक्ति।

(vi) हिरासत में लिए गए व्यक्ति।

(vii) वे व्यक्ति जिनकी वार्षिक आय एक लाख रुपये से अधिक नहीं है (सर्वोच्च न्यायालय में कानूनी सहायता समिति के लिए यह सीमा रु. 1,25,000/- है)।

(viii) मानव तस्करी के शिकार व्यक्ति तथा भिखारी।

लोक अदालत

लोक अदालत एक मंच (फोरम) है जहां वे मामले जो न्यायालय में लंबित हैं अथवा अभी मुकदमे के रूप में दाखिल नहीं हुए हैं (यानी न्यायालय के समक्ष अभी नहीं लाए गए हैं), सौहार्दपूर्ण ढंग से निपटाए जाते हैं, यानी दोनों पक्षों के बीच विवाद का समाधान लोक अदालतों में कराया जाता है।

अर्थ

सर्वोच्च न्यायालय ने लोक अदालत संस्था के अर्थ को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है[7]-

लोक अदालत न्याय व्यवस्था का एक पुराना स्वरूप है जो कि प्राचीन भारत में प्रचलित था और इसकी वैधता आधुनिक

युग में भी समाप्त नहीं हुई है। शब्द युग्म लोक अदालत का अर्थ है। जनता की अदालत या न्यायालय। यह व्यवस्था गांधीवादी दर्शन पर आधारित है। यह वैकल्पिक विवाद समाधान (Alternative Dispute Resolution) का एक अंग है। भारतीय अदालतें लम्बित मुकदमों के रोष से दबी हैं और नियमित न्यायालयों में इन पर तिथि के लिए लंबी, खर्चीली और श्रमसाध्य प्रक्रिया है। अदालतों को क्षुद्र मामलों के निपटारे में भी कई साल लग जाते हैं। इसलिए लोक अदालत त्वरित तथा कम खर्चीले न्याय का एक वैकल्पिक समाधान प्रस्तुत करती है।

लोक अदालत की कार्यवाही में कोई विजयी या पराजित नहीं होता इसलिए आपस में दोनों पक्षों के बीच विद्वेष नहीं रह जाता।

लोक अदालत का प्रयोग भारत में एक वहनीय, किफायती, कार्यक्रम तथा अनौपचारिक विवाद समाधान के वैकल्पिक तरीके के रूप में स्वीकृति पा चुका है।

न्यायालयी न्याय में लोक अदालत एक और विकल्प है। यह आमजन को अनौपचारिक, सस्ता तथा त्वरित न्याय उपलब्ध कराने की एक नई रणनीति है जिसमें ऐसे मामलों को लिया जाता है जो अदालतों में लम्बित हैं तथा ऐसों को भी अभी अदालतों तक नहीं पहुंचे हैं, और बातचीत, मध्यस्थता, मान मनौव्वल, सहजबुद्धि तथा वादियों की समस्याओं के प्रति मानवीय दृष्टिकोण अपनाकर विशेष रूप से प्रशिक्षित एवं अनुभवी विधि अभ्यासियों द्वारा वाद निपटाए जाते हैं।

वैधानिक स्थिति

स्वातंत्र्योत्तर काल में पहला लोक अदालत शिविर 1982 में गुजरात में आयोजित किया गया था। यह पहल विवादों के निपटारे में बहुत सफल हुई थी। परिणामस्वरूप लोक अदालतों का देश के अन्य हिस्सों के प्रसार होने लगा। इस समय यह व्यवस्था एक स्वैच्छिक एवं समझौताकारी एजेंसी के रूप में कार्य कर रही थी और इसके निर्णयों के पीछे कोई वैधानिक पिष्टपोषण (backing) नहीं था। लेकिन लोक अदालतों की बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए इस सुरक्षा तथा इसके द्वारा पारित फसलों को वैधानिक पिष्टपोषण (backing) देने की मांग उठी। यही कारण है कि लोक अदालत को वैधानिक दर्जा प्रदान करने के लिए वैधानिक सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (Legal Services Authorities Act) पारित किया गया।

यह अधिनियम लोक अदालतों के आयोजन तथा इसके कार्यो के संबंध में निम्नलिखित प्रावधान करता है:

1. राज्य वैधानिक सेवाएं प्राधिकरण या जिला वैधानिक सेवाएं प्राधिकरण, या सर्वोच्च न्यायालय वैधानिक सेवाएं प्राधिकरण अथवा उच्च न्यायालय वैधानिक सेवाएं प्राधिकरण लोक अदालतों का आयोजन ऐसे समयान्तरण का अपने क्षेत्राधिकार का उपयोग करते हुए ऐसे स्थानों पर कर सकता है जिसे यह भी उपयुक्त समझता है।
2. किसी इलाके के लिए आयोजित प्रत्येक लोक अदालत में उतनी संख्या में सेवारत अथवा सेवानिवृत्त न्यायिक अधिकारियों तथा उस इलाके के अन्य व्यक्ति शामिल होंगे जितनी कि लोक अदालत का आयोजन करने वाली एजेंसी निर्दिष्ट करे। साधारण एक लोक अदालत में अध्यक्ष के रूप में एक न्यायिक अधिकारी तथा एक वकील व सामाजिक कार्यकर्ता सदस्यों के रूप में होते हैं।
3. लोक अदालत को यह अधिकार होगा कि वह निम्नलिखित विवादों में दोनों पक्षों के बीच समझौता कराने का निश्चिय करें:
   (i) कोई भी मामला जो किसी न्यायालय में लंबित हो या
   (ii) कोई मामला जो किसी न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में आता हो लोक अदालत के समक्ष नहीं लाया जाएगा।

   इस प्रकार लोक अदालत केवल न्यायालय में लंबित मामलों को ही नहीं बल्कि उन मामलों का भी निपटारा कर सकती है जो न्यायालय में अभी नहीं पहुंचे।

   विवाह सम्बन्धी/पारिवारिक विवाद, आपराधिक मामले (Compoundable offences), भूमि अधिग्रहण, सम्बन्धी मामले, श्रम विवाद, कर्मचारी क्षतिपूर्ति के मामले, बैंक वसूली के मामले, पेंशन मामले, आवास बोर्ड एवं मलिन बस्ती क्लियरेंस सम्बन्धी मामले, आवास वित्त सम्बन्धी मामले, उपभोक्ता शिकातार के मालमे, बिजली, टेलीफोन बिल सम्बन्धी मामले, नगरपालिका सम्बन्धी मामले, मकान कर सहित सोल्युलर कम्पनियों से सम्बन्धित विवाद आदि मामले लोक अदालतें द्वारा हाथ में लिए जा रहे हैं।[7a]

   लेकिन लोक अदालतों का उन मामलों में कोई न्याय अधिकार नहीं होगा जो किसी किसी ऐसे

अपराध से जुड़े हैं जो किसी कानून के अंतर्गत समाधेय (Compoundable) नहीं हैं। दूसरे शब्दों में, बीते अपराध जो गैर-समाधेय (non-compoundable) हैं, किसी भी ऐसे कानून के तहत, इस अदालत के अधिकार क्षेत्र में नहीं आते।

4. अदालत के समक्ष लम्बित कोई भी मामला लोक अदालत को संदर्भित किया जा सकता है, यदि:
   (i) यदि वाद को पक्ष विवाद का समाधान लोक अदालत में करना चाहते हैं, या
   (ii) वादियों में से कोई एक न्यायालय में मामले को लोक अदालत को संदर्भित करने के लिए आवेदन देता है, या
   (iii) यदि न्यायालय संतुष्ट है कि मामला लोक अदालत के संज्ञान में लाए जाने के उपयुक्त है।

   मुकदमा दायर किए जाने के पहले के किसी विवाद के मामले को लोक अदालत आयोजित करने वाली एजेंसी द्वारा समाधान के लिए लोक अदालत को संदर्भित किया जा सकता है अगर सम्बन्धित राज्यों में से किसी एक का इस आशय का आवेदन प्राप्त होता है।

5. लोक अदालतों को वही शक्तियां प्राप्त होती हैं जो कि सिविल कोर्ट को कोड ऑफ सिविल प्रोसीजर (1908) के अंतर्गत प्राप्त होती है, जबकि निम्नलिखित मामलों में मुकदमा चलना हो:
   (a) किसी गवाह को तलनामा भेजकर बुलाना और शपथ दिलवाकर उसकी परीक्षा लेना,
   (b) किसी दस्तावेज को प्राप्त एवं प्रस्तुत करना
   (c) शपथ-पत्रों पर साक्ष्यों की प्राप्ति
   (d) किसी भी अदालत या कार्यालय से सार्वजनिक अभिलेख अथवा सामग्री की मांग करना, तथा
   (e) अन्य विनिर्दिष्ट सामग्री

   पुन: एक लोक अदालत को अपने समक्ष प्रस्तुत किए गए मामले के निस्तारण की आपकी पद्धति विनिर्दिष्ट करने की समुचित शक्ति होगी। साथ ही लोक अदालत में प्रस्तुत चली कार्यवाही को भारतीय दंड संहिता 1860 (IPC, 1860) में निर्धारित अर्थो में अदालती कार्यवाही माना जाएगा तथा प्रत्येक लोक अदालत आपराधिक प्रक्रिया संहिता (1973) के उद्देश्य से एक सिविल कोर्ट माना जाएगा।

6. लोक अदालत का निर्णय सिविल कोर्ट के हुकमनामें अथवा किसी भी अन्य अदालत के किसी भी आदेश की तरह अन्य होगा। लोक अदालत द्वारा दिया गया फैसला अंतिम तथा सभी पक्षों पर बाध्यकारी होगा और लोक अदालत के फैसले के विरुद्ध किसी अदालत में कोई अपील नहीं होगी।

लाभ

सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार लोक अदालत के निम्नलिखित लाभ हैं[8]:

1. इसमें कोई अदालती फीस (court-fee) नहीं लगती और अगर अदालती फीस का भुगतान कर दिया गया हो तो लोक अदालत में मामला निपटने के बाद राशि लौटा दी जाएगी।
2. लोक अदालत की प्रमुख विशेषताएं हैं—लचीली प्रक्रिया तथा विवादों की त्वरित सुनवाई। लोक अदालत में दावों का आकलन करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता तथा साक्ष्य अधिनियम, जैसे पद्धतिमूलक कानूनों के सख्त उपयोग की जरूरत नहीं पड़ती।
3. यहां सभी पक्ष अपने वकीलों के माध्यम से न्यायाधीश से सीधे संवाद कर सकते हैं, जो कि नियमित न्यायालयों में संभव नहीं है।
4. लोक अदालत पर निर्णय सम्बद्ध पक्षों पर बाध्यकारी होता है और इसकी हैसियत सिविल कोर्ट के निर्णय के बराबर होती है, साथ ही गैर-अपीलीय होता है जिससे विवाद के अंतिम समाधान में निलंब नहीं होता।

अधिनियम में प्रावधानित उपरोक्त सावधानियों के होने से लोक अदालतें मुकदमें में उलझे लोगों के लिए वरदान हैं क्योंकि यहां विवादों का समाधान शीघ्र, नि:शुल्क तथा सौहार्दपूर्ण ढंग से हो जाता है।

भारत के विधि आयोग ने वैकल्पिक विवाद समाधान (Alternative Dispute Resolution–ADR) के लोगों को संक्षेप में इस रूप में प्रस्तुत किया है[9]:

1. यह कम खर्चीला है।
2. इसमें कम समय लगता है।
3. यह तकनीकी उलझनों से युक्त है - कानूनी न्यायालयों के मुकाबले

4. सम्बद्ध पक्ष अपने वैचारिक मतभेदों पर खुलकर चर्चा करते हैं, बिना किसी खुलासे के व्यय के, जैसा कि कानूनी न्यायालयों में होता है।
5. लोगों को यह अनुभूति होती है कि उनके बीच कोई विजयी या पराजित पक्ष नहीं है, तब भी उनकी शिकायत का निराकरण होता है और सम्बन्ध भी सुरक्षित रहते हैं।

स्थाई लोक अदालतें

कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 को 2012 में संशोधित कर सार्वजनिक उपयोगी सेवाओं से जुड़े मामलों के लिए स्थाई लोक अदालतों का प्रावधान किया गया।

कारण

स्थाई लोक अदालतों की स्थापना के पीछे निम्न कारण हैं:

1. कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 पारित किया गया था ताकि एक मुक्त एवं सक्षम कानूनी सेवाएं प्रदान करने के लिए वैधानिक (कानूनी) सेवा प्राधिकरणों की स्थापना की जा सके। यह प्रावधान समाज के गरीब एवं कमजोर वर्गों के लिए इसलिए दिया गया यदि आर्थिक अथवा अन्य प्रकार की अशक्तता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न हो सके। लोक अदालतों का गठन यह सुनिश्चित करने के लिए किया गया कि न्यायिक प्रणाली का संचालन समान अवसर के आधार पर न्याय के संवर्धन के लिए हो।
2. लोक अदालत, जो कि वैकल्पिक विवाद समाधान को नवाचारी प्रविधि है, न्यायालय के बाहर बातचीत एवं मध्यस्थता की भावना से विवाद समाधान की एक नवाचारी प्रविधि है।
3. हालांकि उक्त अधिनियम के अंतर्गत लोक अदालतों के प्रश्न की वर्तमान योजना की बड़ी कमी यह है कि लोक अदालतों की व्यवस्था प्रमुखत: समझौता अथवा पक्षों के बीच समाधान पर आधारित है। यदि दोनों पक्ष किसी समझौते या समधान तक नहीं पहुंच पाते तब मामला या तो न्यायालय को वापस भेज दिया जाता है जहां से वह यहां भेजा गया था या दोनों पक्षों को सलाह दी जाती है कि वे अपने विवाद को न्यायालयी प्रक्रिया द्वारा सुलझाएं (लोक अदालत में मुकदमा सीधे आने की स्थिति में)। इससे न्याय प्राप्ति में अनावश्यक देरी होती है। यदि लोक अदालतों को यह शक्ति दे दी जाए कि वे दोनों पक्षों के किसी समझौते पर न पहुंच पाने की स्थिति में स्वयं विवाद का निर्णय करें तो यह समरूा काफी हद तक सुलझ जाएगी।
4. पुन: जनोपयोगी सेवाओं, जैसे–एमटीएनएल, दिल्ली विद्युत बोर्ड आदि से सम्बन्धित विवादों को जल्दी निपटाना जरूरी होता है जिससे कि लोगों को बिना विलंब न्याय मिले, यहां तक कि वाद शुरू होने के भी पहले तो बहुत से गंभीर और क्षुद्र मामलों का निस्तारण हो जाएगा और नियमित न्यायालयों का बोझ कम होगा।
5. इसी परिप्रेक्ष्य में वैधानिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 में संशोधन कर स्थाई लोक अदालतों को स्थापित करने की अनुशंसा की गई है ताकि जनोपयोगी सेवाओं से जुड़े मामलों के वाद-पूर्व निस्तारण की व्यवस्था बनाई जा सके, जो बातचीत और मध्यस्थता पर आधारित हो।

विशेषताएं

स्थाई लोक अदालत नामक नई संस्था की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं:

1. स्थाई लोक अदातल में एक अध्यक्ष या सभापति होगा जो कि जिला न्यायाधीश या अतिरिक्त जिला न्यायाधीश रहा हो अथवा जो जिला न्यायाधीश से भी उच्चतर श्रेणी को न्यायिक सेवा में रहा हो तथा दो अन्य व्यक्ति होंगे जिन्हें सार्वजनिक सेवाओं में पर्याप्त अनुभव हो।
2. स्थाई लोक अदालत के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत एक या अधिक जनोपयोगी सेवाएं होंगी, जिसे यात्री अथवा माल परिवहन (हवाई, जल या थल); डाक, टेलीग्राफ या टेलीफोन सेवाएं, किसी संस्थान द्वारा जनता को बिजली, प्रकाश या पानी की आपूर्ति, स्वच्छता, अस्पतालों-डिस्पेंसरियों में सेवाएं; तथा बीमा सेवाएं।
3. स्थाई लोक अदालतों का वित्तीय क्षेत्राधिकार दस लाख रुपये तक का होगा हालांकि केंन्द्रीय सरकार इसे समय-समय पर बढ़ा सकती है।

4. स्थाई लोक अदालत का उन मामलों में कोई क्षेत्राधिकार नहीं होगा जो ऐसे अपराध से जुड़े हैं जो कानून के अंतर्गत समाधेय नहीं है।
5. किसी विवाद को न्यायालय के समक्ष लाने के पहले कोई भी पक्ष उसके समाधान के लिए स्थाई लोक अदालत को आवेदन कर सकता है। आवेदन स्थाई लोक अदालत को प्रस्तुत करने के बाद उस आवेदन का कोई भी पक्ष उसी वाद में किसी न्यायालय में समाधान के लिए नहीं जाएगा।
6. जब कभी स्थाई लोक अदालत को ऐसा प्रतीत हो कि किसी वाद में समाधान के तत्व मौजूद हैं जो सम्बन्धित पक्षों को स्वीकार्य हो सकते हैं तब वह संभावित समाधान को एक सूत्र दे सकती है और उसे पक्षों के समक्ष रख सकती है ताकि वे भी उसे देख समझ लें। यदि इसके बाद वादी एक समाधान तक पहुंच जाते हैं तो लोक अदालत उस आशय का फैसला सुना सकती है। यदि वादी समझौते के लिए तैयार नहीं हो पाते तब लोक अदालत वाद के गुणदोष के आधार पर फैसला सुना सकती है।
7. स्थाई लोक अदालत द्वारा दिया गया प्रत्येक न्याय निर्णय अंतिम होगा और वादियों एवं समस्त पक्षों पर बाध्यकारी होगा और वह लोक अदालत के गठन में शामिल व्यक्तियों के बहुमत के आधार पर पारित होगा।

परिवार न्यायालय

परिवार न्यायालय अधिनियम, 1984 विवाह एवं पारिवारिक मामलों से सम्बन्धित विवादों में मध्यस्थता व बातचीत को प्रोत्साहित करने एवं त्वरित समाधान सुनिश्चित करने के लिए अधिनियमित किया गया।

कारण

अलग परिवार न्यायालय की स्थापना के निम्न कारण हैं:

1. कुछ महिला संगठन, अन्य संस्थाएं एवं नागरिकों के समय-समय पर पारिवारिक विवादों के हल के लिए परिवार न्यायालय के गठन पर जोर देते रहे हैं जहां बल समझौते एवं सामाजिक रूप से वांछनीय परिणामों पर दिया जाना चाहिए वहीं प्रक्रिया एवं साक्ष्य सम्बन्धी रूढ़ नियमों को दरकिनार कर दिया जाना चाहिए।
2. विधि आयोग ने अपनी 59वीं रिपोर्ट में इस बात पर जोर दिया है कि परिवार सम्बन्धी विवादों में न्यायालय को साधारण सिविल मामलों में अपनाए जाने वाले दृष्टिकोण से बिल्कुल अलग दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और ऐसी कोशिश करनी चाहिए कि मुकदमा चलने के पहले ही समझौता हो जाए। नागरिक प्रक्रिया संहिता (Code of Civil Procedure) को 1976 में संबोधित किया गया ताकि परिवार से सम्बन्धित मामलों में याचिका एवं अदालती कार्यवाही के लिए विशेष प्रक्रिया अपनाई जाए।
3. हालांकि, अब भी न्यायालयों द्वारा पारिवारिक वादों के समाधान के लिए मध्यस्थता या समझौताकारी उपायों का यथेष्ट उपयोग नहीं किया जाता और इन मामलों को सामान्य सिविल मामलों की तरह ही देखा और बरता जाता है, जिसमें 'विरोधी-दृष्टिकोण' ही हावी रहता है। इसलिए जनहित में इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई पारिवारिक विवादों के समाधान के लिए परिवार न्यायालय स्थापित किए जाएं।

इस प्रकार परिवार न्यायालय स्थापित करने के मुख्य उद्देश्य और कारण इस प्रकार हैं[10]-

(i) एक विशेषीकृत न्यायालय का सृजन करना, जो केवल पारिवारिक मामले ही देखेगा जिससे कि ऐसे न्यायालय को ऐसे ही मामलों में त्वरित निष्पादन की आवश्यक विशेषज्ञता प्राप्त हो जाए। इस प्रकार विशेषज्ञता तथा त्वरित निस्तारण—ये दो प्रमुख कारक हैं ऐसे न्यायालयों को स्थापित करने के।
(ii) परिवार से सम्बन्धित विवादों के लिए समझौते की प्रक्रिया को संस्थापित करना
(iii) यह कम खर्चीला हल प्रस्तुत करना, तथा,
(iv) अदालती कार्यवाही के दौरान लचीलापन एवं अनौपचारिक वातावरण बनाए रखना।

विशेषताएं

पारिवारिक न्यायालय अधिनियम, 1984 की प्रमुख विशेषताएं निम्नवत हैं:

1. यह राज्य सरकारों द्वारा उच्च न्यायालयों की सहमति से परिवार न्यायालयों की स्थापना का प्रावधान करता है।
2. यह राज्य सरकारों के लिए एक लाख से अधिक जनसंख्या वाले प्रत्येक नगर में एक परिवार न्यायालय की स्थापना को बाध्यकारी बनाता है।

3. यह राज्य सरकारों को अन्य क्षेत्रों में भी परिवार न्यायालय स्थापित करने में समर्थ बनाता है।
4. यह परिवार न्यायालयों के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत विशेष रूप केवल निम्नलिखित मामलों का प्रावधान करता है:
   (i) विवाह सम्बन्धी राहत, विवाह की अमान्यता, न्यायिक विलगाव, तलाक, वैवाहिक अधिकारों की बहाली या पुन: प्रतिष्ठापन अथवा विवाह की वैधता की घोषणा, अथवा
   (ii) दम्पत्ति या उनमें से एक की सम्पत्ति
   (iii) किसी व्यक्ति का औसतता (legitimacy) सम्बन्धी
   (iv) किसी व्यक्ति का अभिभावक अथवा किसी नाबालिग का संरक्षक।
   (v) पत्नी, बच्चों एवं माता-पिता का गुजारा-भत्ता।
5. परिवार न्यायालय के लिए यह अनिवार्य है कि वह प्रथमत: किसी पारिवारिक विवाद में सम्बन्धित पक्षों के बीच मेल-मिलाप या समझौते का प्रयास करे। इस चरण में कार्यवाही बिल्कुल अनौपचारिक होगी और रूढ़ नियमों का पालन नहीं किया जाएगा।
6. यह समझौता वाले चरण में समाज कल्याण एजेन्सियों तथा सलाहकारों के साथ ही चिकित्सकीय एवं कल्याण विशेषज्ञों के सहयोग का भी प्रावधान करता है।
7. यह प्रावधान करता है कि परिवार न्यायालय के समक्ष उपस्थित किसी विवाद से सम्बन्धित पक्षों का एक अधिकार के रूप में, विधि अभ्यासी द्वारा प्रतिनिधित्व नहीं किया जाएगा। हालांकि न्यायालय न्याय के हित में किसी विधि विशेषज्ञ की सहायता ले सकता है-न्यायमित्र के रूप में।
8. यह साक्ष्य तथा प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों को सरलीकृत बना देता है।
9. यह केवल एक अपील का अधिकार देता है जो उच्च न्यायालय में ही की जा सकती है।

स्थापना

वर्तमान (2016) में देशभर में 438 परिवार न्यायालय संचालित हैं। राज्यवार स्थिति तालिका 35.1 में प्रदर्शित है:

तालिका 35.1 *परिवार न्यायालयों की स्थापना (2016)*

क्रम संख्या	राज्य/संघशासित क्षेत्र	परिवार न्यायालयों की संख्या
1.	आन्ध्र प्रदेश	14
2.	अरुणाचल प्रदेश	–
3.	असम	03
4.	बिहार	39
5.	छत्तीसगढ़	19
6.	दिल्ली	15
7.	गोवा	–
8.	गुजरात	17
9.	हरियाणा	07
10.	हिमाचल प्रदेश	–
11.	जम्मू और कश्मीर	–
12.	झारखंड	21
13.	कर्नाटक	27
14.	केरल	28
15.	मध्य प्रदेश	44
16.	महाराष्ट्र	22
17.	मणिपुर	05
18.	मेघालय	–
19.	मिजोरम	04
20.	नागालैंड	02
21.	ओडिशा	17
22.	पंजाब	07
23.	पुडुचेरी	01
24.	राजस्थान	28
25.	सिक्किम	04
26.	तमिलनाडु	14
27.	तेलंगाना	14
28.	त्रिपुरा	03
29.	उत्तर प्रदेश	76
30.	उत्तराखंड	07
31.	पश्चिम बंगाल	02
	कुल	**438**

स्रोत: *विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार*

ग्राम न्यायालय

ग्राम न्यायालय अधिनियम 2008 को निचले स्तर पर पानी यानी तृणमूल स्तर पर ग्राम न्यायालयों की स्थापना के लिए अधिनियमित किया गया है। इसका उद्देश्य नागरिकों को उनके द्वार पर न्याय सुलभ कराना और यह सुनिश्चित करना है कि सामाजिक आर्थिक अथवा अन्य अशक्ताओं के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए।

कारण

ग्राम न्यायालय स्थापित करने के निम्न कारण हैं:

1. गरीबों एवं साधनहीनों तक न्याय सुलभ कराना अब तक विश्व स्तर पर एक गंभीर समस्या है, भले ही इसके लिए अनेक प्रकार के प्रयास किए गए और समितियां अमल में लाई गईं। हमारे देश में, संविधान का अनुच्छेद 39A राज्य को निदेशित करता है कि यह सुनिश्चित करे कि समानता के आधार पर देश में वैधानिक प्रणाली लाभ को बढ़ावा देती है। इस अनुच्छेद के अनुसार न्याय प्राप्त करने के अवसर से कोई नागरिक आर्थिक या अन्य आवश्यकताओं के कारण वंचित न रह जाए, इसके लिए राज्य है। नागरिकों के लिए पृथक कानूनी सहायता उपलब्ध कराएगा।
2. हाल के वर्षों में सरकार ने न्यायिक प्रणाली को सुदृढ़ करने के लिए कई उपाय किए हैं। पद्धतिमूलक कानूनों का सरलीकरण वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रियाओं को जैसे-दिवायन, समझौता तथा मध्यस्थता का समावेश, लोक अदालतों का संचालन आदि ऐसे ही उपाय हैं।
3. भारत के विधि आयोग ने अपनी 114वीं रिपोर्ट जो ग्राम न्यायालय पद है, में ग्राम न्यायालयों की स्थापना का सुझाव दिया है जिससे कि सस्ता एवं समुचित न्याय आम नागरिक को सुलभ कराया जा सके। ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 मोटे तौर पर विधि आयोग की अनुशंसाओं पर आधारित है।
4. गरीबों को उनके दरवाजे पर ही न्याय सुलभ हो, यह गरीब आदमी का सपना है। ग्रामीण क्षेत्रों में ग्राम न्यायालयों की स्थापना से ग्रामीण लोगों को त्वरित, सस्ता व समुचित न्याय सुलभ हो सकेगा।

विशेषताएं

ग्राम न्यायालय अधिनियम की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं:[11]

1. ग्राम न्यायालय प्रथम श्रेणी के दंडाधिकारी (Magistrate) की अदालत होगा तथा इसके न्यायाधिकारी (Presiding Officer) की नियुक्ति उच्च न्यायालय की सहमति से राज्य सरकार करेगी।
2. ग्राम न्यायालय प्रत्येक पंचायत के लिए स्थापित किया जाएगा। जिले में मध्यवर्ती स्तर पर अथवा मध्यवर्ती स्तर पंचायतों के एक समूह के लिए अथवा जिस राज्य में मध्यवर्ती स्तर पर कोई पंचायत नहीं हो, वहां पंचायतों के सशक्त समूह के लिए।
3. न्यायाधिकारी जो इन ग्राम न्यायालयों की अध्यक्षता करेंगे, अनिवार्य रूप से न्यायिक अधिकारी होंगे और उतना ही वेतन प्राप्त करेंगे और उन्हें उतनी ही शक्ति प्राप्त होंगी। जितनी कि एक प्रथम श्रेणी के दंडाधिकारी को, जो उच्च न्यायालयों के अधीन कार्य करते हैं।
4. ग्राम न्यायालय एक चलंत न्यायालय (Mobile Court) होगा और यह फौजदारी और और दीवानी दोनों न्यायालयों की शक्ति का उपभोग करेगा।
5. ग्राम न्यायालय की पीठ मध्यवर्ती पांयत मुख्यालय पर स्थापित होगी, वे गांवों में जाएंगे, कार्य करेंगे और मामलों का निस्तारण करेंगे।
6. ग्राम न्यायालय में आपराधिक मामलों, दीवानी मुकदमों, दावों एवं वादों पर अदालती कार्यवाही चलेगी जैसा कि अधिनियम की पहली एवं दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट है।
7. केन्द्र एवं राज्य सरकारों को प्रथम एवं द्वित्तीय अनुसूची को संशोधित करने का अधिकार अधिनियम के अंतर्गत प्रदान किया गया है, उनकी अपनी विधायी शक्ति के अनुसार।
8. ग्राम न्यायालय फौजदारी मुकदमों में संक्षितप प्रक्रिया का अनुसरण करेगा।

9. ग्राम न्यायालय सिविल न्यायालय की शक्तियों का कुछ संशोधनों के साथ उपयोग करेगा और अधिनियम में उल्लिखित विशेष प्रक्रिया का अनुसरण करेगा।
10. ग्राम न्यायालय उच्च पक्षों के बीच समझौता करने का हर संभव प्रयास करेगा ताकि विवाद का समाधान सौहार्द्रपूर्ण तरीके से हो जाए और इस उद्देश्य के लिए मध्यस्थों की भी नियुक्ति करेगा।
11. ग्राम न्यायालय द्वारा पारित आदेश की हैसियत हुक्मरानों के बराबर होगी और इसके कार्यान्वयन के विलम्ब को रोकने के लिए ग्राम न्यायालय संक्षिप्त प्रक्रिया का अनुसरण करेगा।
12. ग्राम न्यायालय भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 के प्रावधानिक साक्ष्य की नियमावली से बंधा नहीं होगा, बल्क यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों से निर्देशित होगा, अगर उच्च न्यायालय द्वारा ऐसा कोई नियम नहीं बनाया गया है।
13. फौजदारी मामलों में अपील सत्राधीन न्यायालय में प्रस्तुत होगी जिसकी सुनवाई और निस्तारण अपील दाखिल होने के छह माह की अवधि के अंदर किया जाएगा।
14. दीवानी मामलों में अपील जिला न्यायालय में दाखिल होगी जिसकी सुनवाई और निस्तारण अपील दाखिल होने के छह माह की अवधि के अंदर किया जाएगा।
15. एक आरोपित व्यक्ति अपराध दंड को कम या अधिक करने के लिए आवेदन दाखिल कर सकता है।

स्थापना

केन्द्र सरकार ने इन ग्राम न्यायालयों की स्थापना पर आने वाले गैर-आवर्ती खर्चों के लिए 18 लाख रुपए तक खर्च वहन करने का निर्णय लिया है जिसमें से 10 लाख रुपये न्यायालय के निर्माण कार्य पर, 5 लाख रुपए वाहन के लिए तथा 3 लाख रुपए कार्यालय उपस्कर के लिए होगा।

अधिनियम के अंतर्गत पांच हजार ग्राम न्यायालयों की स्थापना की आशा की जाती है। जिसके लिए केन्द्र सरकार 1400 करोड़ रुपए संबंधित राज्यों/संघशासित प्रदेशों को सहायता के रूप में उपलब्ध कराएगी।

ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 के अंतर्गत राज्य सरकारों को ही उच्च न्यायालयों के परामर्श से ग्राम न्यायालयों की स्थापनी करनी है। 2016 तक ग्राम न्यायालयों की स्थापना की राज्यवार स्थिति तालिका 35.2 में निम्नवत है:

तालिका 35.2 *ग्राम न्यायालयों की स्थापना (2016)*

क्र. सं.	राज्य	ग्राम न्यायालय अधिसूचित	ग्राम न्यायालय कार्यरत
1.	मध्य प्रदेश	89	89
2.	राजस्थान	45	45
3.	कर्नाटक	2	0
4.	ओडिशा	16	13
5.	महाराष्ट्र	23	23
6.	झारखंड	6	0
7.	गोवा	2	0
8.	पंजाब	2	1
9.	हरियाणा	2	2
10.	उत्तर प्रदेश	104	2
	कुल	**291**	**175**

स्रोत: *विधि एवं न्याय मंत्रालय, भारत सरकार*

ज्यादातर राज्यों ने तालुका स्तर पर नियमित न्यायालयों की स्थापना कर दी है। पुनः पुलिस अधिकारियों एवं अन्य राज्य कर्मचारियों का ग्राम न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में रहने के प्रति झिझक, बार की अनुत्साहपूर्ण प्रतिक्रिया, नोटरियों (Notaries) तथा स्टैम्प वैंडरों की अनुपलब्धता, नियमित न्यायालयों का समवर्ती क्षेत्राधिकार हरित राज्यों द्वारा इंगित अन्य मुद्दे हैं जो ग्राम न्यायालयों के संचालन में बाधक बन रहे हैं।

ग्राम न्यायालयों के कार्य संचालन को प्रभावित करने वाले मुद्दों पर अप्रैल, 2013 में उच्च न्यायालयों के कार्याधीशों एवं राज्यों के मुख्यमंत्रियों के एक सम्मेलन में चर्चा हुई। इस सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया कि राज्य सरकार और उच्च न्यायालय मिलकर ग्राम न्यायालयों की स्थापना के बारे में निर्णय लें, जो कहीं भी संभव हो और उनकी स्थानीय समस्याओं का भी ध्यान रखें। पूरा ध्यान उन तालुकाओं में ग्राम न्यायालय स्थापित करने पर होना चाहिए जहां नियमित न्यायालय नहीं है।

तालिका 35.3 *अधीनस्थ न्यायालयों से संबंधित अनुच्छेद, एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
233	जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति
233ए	कतिपय जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति की मान्यकरण तथा उनके द्वारा दिए गए निर्णयों का मान्यकरण
234	न्यायिक सेवा में जिला न्यायाधीशों को छोड़कर अन्य व्यक्तियों की नियुक्ति
235	अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण
236	व्याख्या
237	इस अध्याय के प्रावधानों का दंडाधिकारियों के किसी वर्ग या वर्गों पर लागू होना

संदर्भ सूची

1. 20वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1966 के द्वारा संविधान में एक नया अनुच्छेद 233-क जोड़ा गया, जिसने पूर्व प्रभाव से कुछ जिला न्यायाधीशें की नियुक्ति एवं उनके द्वारा दिये गये निर्णयों को वैध ठहराया।
2. व्यवहार में, राज्य लोक सेवा आयोग, राज्य की न्यायिक सेवा के अधिकारियों की भर्ती के लिये प्रतियोगी परीक्षा का आयोजन करता है।
3. अधीनस्थ न्यायाधीश को दीवानी न्यायाधीश (वरिष्ठ विभाग), दीवानी न्यायाधीश (वर्ग I) एवं इसी प्रकार के कई अन्य नामों से भी जाना जाता है। उसे सहायक सत्र न्यायाधीश की शक्तियां दी जा सकती हैं। ऐसे मामलों में वह जिला न्यायाधीश के समान दीवानी और अपराधिक मामलों की शक्तियों का प्रयोग करता है।
4. मुंसिफ को दीवानी न्यायाधीश (कनिष्ठ विभाग), दीवानी न्यायाधीश (वर्ग II) एवं इसी प्रकार के कई अन्य नामों से भी जाना जाता है।
5. दिल्ली, बंबई, कलकत्ता एवं मद्रास को पहले प्रेसीडेंसी नगरों के नाम से जाना जाता था।
6. वार्षिक प्रतिवेदन 2015-16, विधि एवं न्याय मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ 91-92
7. पी.टी. थॉमस बनाम थॉमस जॉब (2005)।

7a. इंडिया 2010 अ रेफरेंस एनुअल, पब्लिकेशन डिविजन, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ 711

8. पी.टी. थॉमस बनाम थॉमस जॉब (2005)।
9. भारत का विधि आयोग, रिपोर्ट नं. 222, शीर्षक ''नीड फॉर जस्टिस-डिस्पेन्सेशन'' थ्रू एडीआर ईटीसी'', अप्रैल 2009, पृष्ठ 22-23
10. वार्षिक प्रतिवेदन 2015-16, विधि एवं न्याय मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ 85
11. प्रेस इन्फॉरमेशन ब्यूरो, भारत सरकार, सितंबर 2009।